भगवान श्रेयांसनाथ जैन स्टडीज फण्ड, बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय वाराणसी एवं प्राकृत भाषा विकास फाउण्डेशन के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित श्री सिद्धचक्र विधान राष्ट्रीय विद्वत्संगोष्ठी दिनांक – 28 फरवरी से 01 मार्च 2026 तक, श्री दि. जैन मंदिर सीसामऊ कानपुर उ.प्र. में

# सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप और उनके भेद : सिद्धचक्र विधान के परिप्रेक्ष्य में

- डॉ. आशीष जैन आचार्य शाहगढ़ सागर

(राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त)

- महामंत्री, प्राकृत भाषा विकास फाउण्डेशन

- संयुक्त मंत्री, अ.भा.दि. जैन शास्त्रिपरिषद्

---

दो तत्व हैं – जीव और अजीव। विस्तार रूप से तत्व सात हैं – जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष। जीव को छोड़कर शेष तत्व अजीव में समाहित हैं। संसार की प्रक्रिया इन सात तत्वों के संयोजन से चल रही है। जीवन-मृत्यु जीव और अजीव के संयोग से है। जीव तत्व अनंतज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य से सहित है। संसार के प्रत्येक जीव में जानना और देखना –ये स्वभाव से हैं अर्थात् जीव का यही लक्षण है – चेतना सहित, जो जानता है देखता है, जो उपयोग सहित है। प्रत्येक संसारी जीव ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय; इन आठ कर्मों को हर क्षण बाँध रहा है, कर रहा है इसलिए जीव की अनंत शक्ति पर आवरण पड़ गया है, वह शक्ति ढक गयी है। उस शक्ति को प्रकट करने के लिए इन आठ कर्मों का क्षय करना पड़ता है जिसके लिए सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनों की एकता ही एकमात्र कारण है। कर्म दो प्रकार से नष्ट होते हैं – घातिया कर्म और अघातिया कर्म। जो जीव के सबसे अधिक क्षति पहुंचाने वाले हैं घात करने वाले हैं – मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय। शेष अघातिया हैं। इसी क्रम से कर्म क्षय होते हैं। सबसे पहले मोहनीय कर्म ही नष्ट होता है क्योंकि यही कर्मों का राजा है। इसके नष्ट होते ही अन्य कर्म भी क्रमशः नष्ट होते चले जाते हैं। चार कर्मों के नष्ट होने के उपरान्त अरिहंत बनते हैं। अरिहंत जीवों के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं। तत्पश्चात् शेष चार अघातिया कर्म नष्ट होते हैं। जिससे सिद्धत्व की प्राप्ति होती है।

सिद्ध के मायने है जिन्होंने सभी कर्मों का नाश कर दिया है, जो संसार में पुनः आगमन नहीं करेंगे, जो आत्मानंद में हैं।

अरिहंत और सिद्ध किसी व्यक्ति का नाम नहीं है। यह वह अवस्था है जिसे प्रत्येक जीव प्राप्त कर सकता है। इसलिए यह बात स्वयमेव सिद्ध होती है कि जो जैसा बनना चाहता है उसे उसकी पूजा-अर्चना-भक्ति-प्रशंसा-वंदना आदि करना चाहिए। जो संसार में रहना चाहता है वह संसारी की पूजा अर्चना करें और संसार से मुक्त होना चाहता है वह संसार से मुक्त हुए अरिहंत और सिद्ध की वंदना करें। इसलिए पंच परमेष्ठी ही आराध्य कहे गए हैं। अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु। शेष तीन परमेष्ठी अरिहंत और सिद्ध परमेष्ठी की प्रतिकृति हैं क्योंकि यही वह रूप है जो अरिहंत का है सिद्ध का है- यही मार्ग है- जिससे अरिहंत और सिद्ध बनते हैं। इसलिए ये पाँच ही पद पूज्य कहे गए हैं।

चूंकि सिद्ध परमेष्ठी की आराधना और भक्ति से बहु पुण्यसंचय होता है। सिद्धों की आराधना से जन्म-जन्म के बँधे पाप नष्ट होते हैं। सिद्ध परमेष्ठी की आराधना जनसामान्य अष्टाह्निका पर्व में श्री सिद्धचक्र विधान करते हैं जो बहु पुण्य का हेतु है। अष्टाह्निक पर्व गौरवशाली है, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का समायोजन होने से यह विधान पापों को नष्ट करने वाला और पुण्य की प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। श्री सिद्धचक्र विधान वर्ष में कभी भी किया जा सकता है। यह यजमान अपना भाव है। अष्टाह्निका पर्व में करने से विशेष पुण्य की प्राप्ति होती है। इस आलेख में सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप और उनके भेद : सिद्धचक्र विधान के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कर रहे हैं। यही भावना है कि इस लेख को लिखते समय और जो इसे पढ़े, सुनेः उन सभी के कर्मों का बंधन ढीला हो।

◆ **सिद्धों को जानने का प्रयोजन – सिद्धों को जानने का वास्तविक प्रयोजन बाह्य पूजा तक सीमित नहीं, बल्कि अपने शुद्ध आत्मस्वरूप की पहचान करना है। सिद्ध भगवान् अनंत ज्ञान, दर्शन और वीतरागता के पूर्ण विकसित रूप हैं। जब साधक सिद्धों के स्वरूप का चिंतन करता है, तब उसे यह बोध होता है कि यही गुण उसकी आत्मा में भी विद्यमान हैं। इस प्रकार सिद्धों का ज्ञान आत्मा की शुद्धता, स्वतंत्रता और मोक्षस्वभाव का प्रत्यक्ष प्रमाण बनता है।**

**दूसरा महत्वपूर्ण प्रयोजन है आत्मप्रेरणा और साधना का मार्गदर्शन। सिद्धों की स्थिति यह बताती है कि कर्मबंधन से पूर्णतः मुक्त होना संभव है इसलिए सिद्धों को जानकर साधक अपने भीतर राग -द्वेष का क्षय करने , सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को अपनाने और मोक्षमार्ग पर चलने के लिए प्रेरित होता है। संक्षेप में, सिद्धों का ज्ञान हमें यह सिखाता है कि "जैसे वे बने हैं, वैसे हम भी बन सकते हैं"—यही उनका सर्वोच्च प्रयोजन है। कहा भी गया है-**

**जहेउ णिम्मलु णाणमउ सिद्धिहिं णिवसइ देउ।**
**तेहउ णिवसइ बंभु परु देहहं मं करि भेउ 26।।**[1]

जैसा कार्य समयसार स्वरूप निर्मल ज्ञानमयी देव सिद्धलोक में रहते हैं , वैसा ही कारण समयसार स्वरूप परब्रह्म शरीर में निवास करता है। अतः हे प्रभाकर भट्ट ! तू सिद्ध भगवान् और अपने में भेद मत कर।

**तदेव मुक्तजीवसदृशं स्वशुद्धात्मस्वरूपमुपादेयमिति भावार्थः।**[2]

वह मुक्त जीव सदृश स्वशुद्धात्मस्वरूप कारणसमयसार ही उपादेय है , ऐसा भावार्थ है।

उक्त गाथा का मूल भाव अत्यंत गूढ़ और साधना-पथ का मार्गदर्शक है। इसमें कहा गया है कि जैसे सिद्ध भगवान् पूर्णतः **निर्मल ज्ञानमय स्वरूप** में सिद्धलोक में स्थित हैं, वैसे ही वही शुद्ध, ज्ञानस्वरूप **परमात्म तत्व हमारे भीतर भी विद्यमान है**। अतः सिद्धों को जानने का प्रयोजन केवल बाह्य स्तुति या वंदना नहीं, बल्कि **अपने ही शुद्ध आत्मस्वरूप की पहचान करना** है। "**तेहउ णिवसइ बंभु परु देहहं मं करि भेउ**" का आशय यही है कि शरीर में स्थित आत्मा और सिद्ध परमात्मा में तत्त्वतः कोई भेद नहीं है—भेद केवल कर्मों और अवस्थाओं का है।

टीका में भी स्पष्ट किया गया है कि **मुक्त जीव के समान स्वशुद्ध आत्मस्वरूप ही उपादेय (ग्रहण करने योग्य)** है। अतः सिद्धों को जानने का वास्तविक प्रयोजन यह है कि साधक उनके गुणों —अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, वीतरागता—को समझकर **अपने भीतर उसी स्वरूप को जाग्रत करने का प्रयास करे**।

[1] *परमात्मप्रकाश/मूल/1/26*
[2] *परमात्मप्रकाश टीका/1/25/30/1*

**सिद्धों का ज्ञान हमें यह बोध कराता है कि मोक्ष कोई दूर की वस्तु नहीं , बल्कि हमारी आत्मा का स्वाभाविक स्वरूप है ; इसलिए सिद्धों का चिंतन आत्म -जागरण और आत्म -साक्षात्कार की दिशा में प्रेरणा देता है।**

◆ **सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप –** **शुद्ध रत्नत्रय की साधना से अष्ट कर्मों की आत्यंतिकी निवृत्ति द्रव्यमोक्ष है और रागादि भावों की निवृत्ति भावमोक्ष है । मनुष्य गति से ही जीव को मोक्ष होना संभव है । आयु के अंत में उसका शरीर कपूरवत् उड़ जाता है और वह स्वाभाविक ऊर्ध्व गति के कारण लोकशिखर पर जा विराजते हैं, जहाँ वह अनंतकाल तक अनंत अतींद्रिय सुख का उपभोग करते हुए अपने चरम शरीर के आकार रूप से स्थित रहते हैं और पुनः शरीर धारण करके जन्म-मरण के चक्कर में कभी नहीं पड़ते । ज्ञान ही उनका शरीर होता है । जैन दर्शनकार उसके प्रदेशों की सर्व व्यापकता स्वीकार नहीं करते हैं, न ही उसे निर्गुण व शून्य मानते हैं । उसके स्वभावभूत अनंत ज्ञान आदि आठ प्रसिद्ध गुण हैं । जितने जीव मुक्त होते हैं उतने ही निगोद राशि से निकलकर व्यवहार राशि में आ जाते हैं, इससे लोक जीवों से रिक्त नहीं होता।**[3]

**कर्ममल से मुक्त आत्मा ऊर्ध्वलोक के अंत को प्राप्त करके सर्वज्ञ सर्वदर्शी अनंत अतिंद्रिय सुख का अनुभव करता है ।**[4]

**जो उक्त पाँच प्रकार के संसार से निवृत्त हैं वे मुक्त हैं।**[5]

**जिनके द्रव्य व भाव दोनों कर्म नष्ट हो गये हैं वे मुक्त हैं।**[6]

**जिनके अष्ट कर्म नष्ट हो गये हैं, शरीर रहित हैं, अनंतसुख व अनंतज्ञान में आसीन हैं और परम प्रभुत्व को प्राप्त हैं ऐसे सिद्ध भगवान् मुक्त हैं।**[7]

**शुद्धचेतनात्म या केवलज्ञान व केवलदर्शनोपयोग लक्षण वाला जीव मुक्त है।**[8]

---

[3] जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष/मोक्ष

[4] कम्ममलविप्पमुक्को उड्ढं लोगस्स अंतमधिगंता । सो सव्वणाणदरिसी लहदिं सुहमणिंदियमणंतं ।। *पंचास्तिकाय/28*

[5] उक्तात्पंचविधात्संसारान्निवृत्ता । ये ते मुक्ताः ।। *सर्वार्थसिद्धि/2/10/169/7*

[6] निरस्तद्रव्यभावबंधा मुक्ताः। *राजवार्तिक/2/10/2/124/23*

[7] णट्ठट्ठकम्मसुद्धा असरीराणंतसोक्खणाणट्ठा । परमपहुत्तं पत्ता जे ते सिद्धा हु खलु मुक्का ।। *नयचक्र बृहद्/107*

[8] शुद्धचेतनात्मका मुक्ता.....केवलज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणा मुक्ताः। *पंचास्तिकाय / तात्पर्यवृत्ति/109/174/13*

सिद्ध वह आत्मा है जिसने समस्त कर्ममल का पूर्ण क्षय कर लिया है और जो अब किसी भी प्रकार के बंधन, आवरण या विकार से रहित होकर अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित है। ऐसी आत्मा ऊर्ध्वगमन करके लोक के सर्वोच्च भाग—सिद्धशिला—में विराजमान होती है। वहाँ वह **अनंत ज्ञान (केवलज्ञान), अनंत दर्शन, अनंत सुख और अनंत वीर्य** से सम्पन्न होकर अतिंद्रिय, निराकुल एवं अखंड आनन्द का अनुभव करती है। पंचास्तिकाय के अनुसार यह अवस्था पूर्ण निर्मलता की है, जहाँ आत्मा के ज्ञान-दर्शन में कोई बाधा नहीं रहती।

सिद्ध का एक प्रमुख लक्षण यह है कि वह **संसार के सभी प्रकार के बंधनों से पूर्णतः निवृत्त** हो चुका होता है। उसके लिए अब न जन्म है, न मृत्यु, न ही किसी प्रकार की गति या परिवर्तन। सर्वार्थसिद्धि और राजवार्तिक के अनुसार जिनके **द्रव्यकर्म (वास्तविक कर्मपुद्‌गल) और भावकर्म (आंतरिक विकार)** दोनों नष्ट हो जाते हैं, वही वास्तविक मुक्त कहलाते हैं। इस अवस्था में आत्मा न तो किसी शरीर में बंधी रहती है और न ही इन्द्रियों पर निर्भर होती है; वह पूर्णतः **अशरीरी, स्वतंत्र और स्वाधीन सत्ता** बन जाती है।

नयचक्र के अनुसार सिद्ध वे हैं जिनके **अष्ट कर्म (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अंतराय)** पूर्णतः नष्ट हो गए हैं। इसलिए वे न केवल शरीररहित होते हैं, बल्कि **अनंत ज्ञान और अनंत सुख में स्थित होकर परम प्रभुत्व (पूर्ण स्वराज्य)** को प्राप्त करते हैं। उनके लिए कोई बाह्य नियंत्रण या निर्भरता नहीं रहती—वे अपने शुद्ध आत्मस्वभाव में ही पूर्ण हैं।

तात्पर्यवृत्ति के अनुसार सिद्ध का वास्तविक स्वरूप **शुद्ध चेतनात्मा** है, जिसमें केवलज्ञान और केवलदर्शन का अखंड उपयोग प्रकट रहता है। वहाँ न राग है, न द्वेष, न अज्ञान—केवल शुद्ध प्रकाशमान चेतना है। इस प्रकार सिद्ध अवस्था आत्मा की चरम और स्वाभाविक स्थिति है, जहाँ वह अपने नित्य, अविनाशी, निर्मल और पूर्ण स्वरूप में स्थित रहती है। यही सिद्धत्व जैन दर्शन में आत्मा की सर्वोच्च उपलब्धि मानी गई है।

◆ **सिद्ध परमेष्ठी के भेद (निश्चय–व्यवहार) एवं गुण-स्वरूप**

सिद्ध परमेष्ठी को दो दृष्टियों से समझा जाता है—

- **निश्चय नय से**: सिद्ध आत्मा पूर्णतः *शुद्ध चेतनस्वरूप* है। उसमें न कोई भेद, न कोई विशेषता का अंतर—सभी सिद्ध समान, निराकार, निर्लेप और अनंत ज्ञान-दर्शनमय हैं। यहाँ केवल आत्मा का शुद्ध तत्त्व ही ग्राह्य है।
- **व्यवहार नय से**: व्यवहार में हम सिद्धों को उनके *पूर्व देह, देश, काल, साधना आदि* की अपेक्षा से भिन्न-भिन्न मानते हैं—जैसे किसी तीर्थंकर का सिद्ध होना, किसी मुनि का सिद्ध होना आदि। यह भेद वास्तविक नहीं, बल्कि उपाधि-आधारित (व्यवहारिक) है।

◆ **सिद्धों के आठ प्रमुख गुण (अष्टगुण)**

सिद्धों के आठ मुख्य गुण बताए गए हैं[9] —

1. **क्षायिक सम्यक्त्व** – पूर्ण शुद्ध श्रद्धा
2. **अनंतज्ञान** – सर्वज्ञता
3. **अनंतदर्शन** – सर्वदर्शिता
4. **अनंतवीर्य** – अनंत शक्ति
5. **सूक्ष्मत्व** – अत्यंत सूक्ष्म, अशरीरी अवस्था
6. **अवगाहनत्व** – लोक के शीर्ष में स्थित रहना (जन्म-मरण से परे)
7. **अगुरुलघुत्व** – न भारी, न हल्का (समान स्थिति)
8. **अव्याबाधत्व** – किसी प्रकार की बाधा या दुःख का अभाव

[9] सम्मत्त-णाण-दंसण-वीरिय-सुहुमं तहेव अवगहणं। अगुरुलघुमव्वावाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं। *लघु सिद्धभक्ति/8*

क्षायिक सम्यक्त्व, अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतवीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघत्व और अव्याबाधात्व, ये सिद्धों के आठ गुण वर्णन किये गये हैं।

*(वसुनंदी श्रावकाचार/537); (द्रव्यसंग्रह टीका/14/42/2 पर उद्धृत); (परमात्मप्रकाश/टीका/1/61/61/8 पर उद्धृत) (पंचाध्यायी/उत्तरार्ध/617-618)*

◆ **सिद्धों के अन्य आत्यंतिक (विशेष) गुण**

*भगवती आराधना*[10] **आदि ग्रंथों में सिद्धों के कुछ और गहन गुण बताए गए हैं—**

- **अकषायत्व** — राग-द्वेष का पूर्ण अभाव
- **अवेदत्व** — सुख-दुःख के वेदनीय कर्म से रहित
- **अकारकत्व** — कोई क्रिया (कर्मबंधन) नहीं करते
- **अशरीरी** — शरीर से पूर्णतः मुक्त
- **अचलत्व** — स्थिर, अचल स्थिति
- **अलेपत्व** — किसी भी कर्म का लेप नहीं

◆ **धवला के अनुसार विस्तृत गुण**

धवला[11] में सिद्धों के गुणों को और विस्तार से बताया गया है—

- अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्य
- क्षायिक सम्यक्त्व व अकषाय चारित्र
- जन्म-मरण रहितता
- अशरीरत्व (सूक्ष्मता)
- अगुरुलघुत्व
- पंच क्षायिक लब्धियाँ (दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य की पूर्णता)

साथ ही, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से ये गुण **बारह प्रकार** से भी माने जाते हैं।[12]

◆ **अनंत गुणों की परिकल्पना**

---

[10] अकसायमवेदत्तमकारकदाविदेहदा चेव। अचलत्तमलेपत्तं च हुंति अच्चंतियाइं से।। *भगवती आराधना/2157/1847*
अकषायत्व, अवेदत्व, अकारकत्व, देहराहित्य, अचलत्व, अलेपत्व, ये सिद्धों के आत्यंतिक गुण होते हैं।

[11] (अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, क्षायिक सम्यक्त्व, अकषायत्व रूप चारित्र, जन्म-मरण रहितता (अवगाहनत्व), अशरीरत्व (सूक्ष्मत्व), नीच-ऊँच रहितता (अगुरुलघुत्व), पंचक्षायिक लब्धि (अर्थात्–क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकउपभोग और क्षायिकवीर्य) ये गुण सिद्धों में आठ कर्मों के क्षय से उत्पन्न हो जाते हैं। 4-11। *( धवला 13/5, 4, 26/ गाथा 31/70)*। *धवला 7/2, 1, 7/ गाथा 4-11/14-15* का भावार्थ।

[12] द्रव्यतः क्षेत्रतश्चैव कालतो भावतस्तथा। सिद्धाप्तगुणसंयुक्ता गुणाः द्वादशधा स्मृताः।। *धवला 13/5, 4, 26/ श्लोक 30/69*
सिद्धों के उपरोक्त गुणों में, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा चार गुण मिलाने पर बारह गुण माने गये हैं।

**द्रव्यसंग्रह टीका[13] के अनुसार सिद्धों के केवल आठ या बारह ही नहीं, बल्कि अनंत गुण हैं। जैसे–**

- **निर्गतित्व (गति रहित)**
- **निरिन्द्रियत्व (इन्द्रियों से परे)**
- **निष्कायत्व (शरीर रहित)**
- **निर्योगत्व (मन-वचन-काय की क्रिया का अभाव)**
- **निर्वेदत्व, निष्कषायत्व**
- **निर्नाम, निर्गोत्र, निरायुषत्व आदि**

**साथ ही अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व जैसे सामान्य गुण भी उनमें विद्यमान हैं।**

**सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप निश्चय से एक और अभेद है, जबकि व्यवहार से अनेक प्रतीत होता है। उनके गुण केवल गिनती के नहीं, बल्कि अनंत हैं; फिर भी आठ, बारह या अन्य प्रकार से उनका वर्णन किया जाता है। वास्तव में सिद्ध अवस्था पूर्ण शुद्धता, अनंत ज्ञान-दर्शन और अखंड आनंद की परम अवस्था है।**

### ◆ सिद्धचक्र विधान : स्वरूप और संरचना

**पं.संतलाल (ई. श. 17-18) द्वारा भाषा छंदों में रचित सिद्धचक्र विधान, जो श्री जिनसेनाचार्य द्वारा महापुराण में रचित जिन सहस्रनाम के आधार पर लिखा गया है।[14]**

[13] इति मध्यमरुचिशिष्यापेक्षया सम्यक्त्वादिगुणाष्टकं भणितम्। मध्यमरुचिशिष्यं प्रति पुनर्विशेषभेदनयेन निर्गतित्वं निरिंद्रियत्वं, निष्कायत्वं, निर्योगत्वं, निर्वेदत्वं, निष्कषायत्वं, निर्नामत्वं निर्गोत्रत्वं, निरायुषत्वमित्यादिविशेषगुणास्तथैवास्तित्व-वस्तुत्वप्रमेयत्वादिसामान्यगुणाः स्वागमाविरोधेनानंता ज्ञातव्या। *द्रव्यसंग्रह टीका/14/43/6*

इस प्रकार सम्यक्त्वादि आठ गुण मध्यम रुचिवाले शिष्यों के लिए हैं। मध्यम रुचिवाले शिष्य के प्रति विशेष भेदनय के अवलंबन से गतिरहितता, इंद्रियरहितता, शरीररहितता, योगरहितता, वेदरहितता, कषायरहिता, नामरहितता, गोत्ररहितता तथा आयुरहितता आदि विशेष गुण और इसी प्रकार अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्वादि सामान्यगुण, इस तरह जैनागम के अनुसार अनंत गुण जानने चाहिए।

[14] जैनेन्द्रसिद्धान्त कोष/सिद्धचक्र

◆ **"सिद्धचक्र" शब्द का तात्त्विक अर्थ**

**"सिद्धचक्र" का अभिप्राय सिद्धों के समष्टि-स्वरूप से है।** जैनागम के अनुसार **त्रिलोक के अग्रभाग (सिद्धशिला)** पर **अनन्तानन्त सिद्ध भगवान् विराजमान** रहते हैं। उन समस्त सिद्धों के प्रति **एकाग्र भाव से नमन एवं आराधना** का सशक्त माध्यम **सिद्धचक्र विधान** है। इस प्रकार यह विधान **सर्वसिद्धों की समष्टिगत उपासना का प्रतीक** है।

◆ **सिद्धचक्र विधान की परंपरा एवं ऐतिहासिकता**

**आठ दिवसीय विधानों में सिद्धचक्र विधान का सर्वोच्च स्थान** है। यह विधान **आत्मशुद्धि एवं आध्यात्मिक साधना का समन्वित एवं व्यवस्थित विधान** है। 18–19वीं शताब्दी में **भट्टारक शुभचन्द्र** द्वारा इसका **संस्कृत भाषामय प्रणयन** किया गया। पश्चात् 1934 ईस्वी में **सहारनपुर निवासी पंडित संतलाल कवि** ने इसका **हिन्दी रूपांतरण** कर इसे जनसुलभ बना दिया। विद्वत्समाज ने इसकी गूढ़ आध्यात्मिकता को दृष्टिगत रखते हुए इसे **"लघु समयसार"** की संज्ञा प्रदान की है।

◆ **अर्घावली की संरचना एवं आध्यात्मिक संकेत**

**सिद्धचक्र विधान की प्रमुख विशेषता इसकी द्विगुणित अर्घावली** है, जो साधक की **आत्मविशुद्धि को क्रमशः उन्नत** करती है। इसमें **प्रथम पूजा में ८ अर्घ** से आरम्भ होकर **अंतिम पूजा में १०२४ अर्घ** तक की व्यवस्था है। यह **द्विगुणित क्रम** साधक की **आंतरिक शुद्धि, श्रद्धा-वृद्धि एवं आध्यात्मिक आरोहण** का द्योतक है। इस प्रकार **अर्घावतरण की यह प्रक्रिया आत्मोत्कर्ष का प्रतीकात्मक एवं साधनात्मक रूप** है।

◆ **विविध विधानों का समन्वित स्वरूप**

सिद्धचक्र विधान की एक विशिष्टता यह है कि इसमें **अनेक महत्त्वपूर्ण विधानों का समावेश** किया गया है, जिससे इसकी **महत्ता बहुगुणित** हो जाती है। इसमें–

- **तृतीय पूजा में लघु शान्ति विधान,**
- **चतुर्थ पूजा में चौंसठ ऋद्धि विधान,**
- **षष्ठ पूजा में कर्मदहन विधान,**
- **सप्तम पूजा में पंचपरमेष्ठी विधान,**
- तथा **अष्टम पूजा में सहस्रनाम विधान** का समावेश है। अतः यह विधान **समग्र आध्यात्मिक साधना का एकीकृत एवं व्यापक स्वरूप** प्रस्तुत करता है।

**◆ चौंसठ ऋद्धि विधान की विशेषता**

विशेषतः **चतुर्थ पूजा में वर्णित चौंसठ ऋद्धि विधान** अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसमें **ऋद्धिधारी मुनिराजों के गुणों का सूक्ष्म एवं प्रभावशाली गुणानुवाद** किया गया है, जो केवल **भक्तिपरक** ही नहीं, अपितु **गहन ज्ञानपरक** भी है। इसकी **व्यापकता, गाम्भीर्य एवं आध्यात्मिक प्रभावशीलता** को दृष्टिगत रखते हुए इसे **"महापूजा" कहना सर्वथा युक्तिसंगत** है।[15]

**◆ सिद्ध भगवान् की आराधना का सुफल**

जो जीव **संसारबंधन से सर्वथा मुक्त होकर समस्त कर्मों का क्षय कर देते हैं**, वे ही **सिद्ध भगवान्** कहलाते हैं। वे **नित्य, निर्विकारी, अनन्तज्ञान–अनन्तदर्शन–अनन्तसुखस्वरूप** परमात्मतत्त्व हैं। ऐसे **आराध्य सिद्धों की निष्ठापूर्वक उपासना** करने वाला गृहस्थ क्रमशः **आध्यात्मिक उत्कर्ष** को प्राप्त करता है। शास्त्रों में वर्णित है कि वह **लोकपाल पद** तक भी प्रतिष्ठित हो सकता है, जिसका एक भेद **कुबेर** माना गया है। **प्रथम स्वर्ग का कुबेर एकभवातारी** होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि **सिद्ध पूजा भवचक्र के उच्छेदन का परम साधन** है।

**◆ अष्टान्हिका पर्व एवं सिद्धचक्र विधान की परंपरा**

**अष्टान्हिका पर्व में सिद्धचक्र विधान का विशेष महत्त्व** स्वीकार किया गया है। प्रायः सभी स्थानों पर इस अवसर पर **सिद्धचक्र विधानों का भव्य आयोजन** किया जाता है। इसके मूल में **मैना**

---

[15] सिद्धचक्र विधान प्रस्तावना, प्रकाशन अमर ग्रन्थालय इंदौर म.प्र.

**सुन्दरी की प्रसिद्ध कथा** है, जिसमें उन्होंने **अष्टान्हिका पर्व के दौरान विधिपूर्वक सिद्धचक्र की आराधना** कर अपने **पति तथा सात सौ कुष्ठरोगियों के कुष्ठ का निवारण** किया। अतः यह विधान **आध्यात्मिक ही नहीं, लोककल्याणकारी प्रभाव का भी प्रतीक** माना गया है।

**◆ "सिद्ध" शब्द का मंगलसूचक स्वरूप**

**"सिद्ध" शब्द अत्यन्त मंगलमय एवं सिद्धिदायक** माना गया है। इसके **नामोच्चारण मात्र से विविध कार्यों की सिद्धि** का विधान शास्त्रों में प्रतिपादित है। इसी कारण अनेक आचार्यों ने अपने ग्रंथों का **मंगलाचरण "सिद्ध" शब्द से** किया है।

**◆ व्याकरण ग्रंथों में "सिद्ध" शब्द का प्रयोग**

**आचार्य पूज्यपाद स्वामी** ने अपने प्रसिद्ध व्याकरण ग्रंथ **"जैनेन्द्रप्रक्रिया"** का आरंभ **"सिद्ध" शब्द से** करते हुए प्रथम सूत्र दिया— **"सिद्धिरनेकान्तात्"** अर्थात् **अनेकान्त के आधार से शब्दों की सिद्धि होती है।**

इसी प्रकार **आचार्य शर्ववर्मा** ने **"कातन्त्ररूपमाला"** में **"सिद्धो वर्णसमाम्नायः"** इस सूत्र से ग्रंथ का प्रारंभ किया, जिसका अभिप्राय है कि **वर्णों का समुदाय अनादिकाल से सिद्ध है।**

**◆ "सिद्ध" एवं "सिद्धि" का मंगलाचरणात्मक महत्त्व**

ग्रंथारंभ में **"सिद्ध" अथवा "सिद्धि" शब्द का प्रयोग स्वयमेव मंगलाचरण का स्वरूप** धारण कर लेता है। इससे **कृति का निर्माण निर्विघ्न, सफल एवं सिद्धिपरक** होता है। अतः यह परंपरा केवल भाषिक नहीं, अपितु **आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण** है।

**◆ "सिद्ध" से "सिद्धान्त" की व्युत्पत्ति**

**"सिद्ध" शब्द से "सिद्धान्त" की संज्ञा का उद्भव** माना गया है। जिन **शास्त्रों अथवा ग्रंथों के उपसंहार में सिद्धों का निरूपण** होता है, वे **"सिद्धान्त"** कहलाते हैं। इस संदर्भ में कहा गया है कि—**"सिद्धानामन्ते निरूपणात् सिद्धान्तः"** अर्थात् जिन ग्रंथों में अंत में सिद्धों का प्रतिपादन होता है, वे ही **सिद्धान्त** कहे जाते हैं।

◆ **सिद्धान्त की परिभाषा एवं महत्ता**

**"सिद्धानां कीर्तनादन्ते, यः सिद्धान्तप्रसिद्धवाक्।**
**सोऽनाद्यनन्तसन्तानः, सिद्धान्तो नोऽवताच्चिरम्।।"**

इस वचन का अभिप्राय है कि **जिन ग्रंथों के अन्त में सिद्धों का कीर्तन एवं निरूपण किया गया हो, वे "सिद्धान्त" कहलाते हैं।** ऐसा **अनादि-अनन्त परंपरा से प्रवाहित सिद्धान्त** चिरकाल तक हमारी रक्षा करे—यह मंगलकामना इसमें निहित है। इसी दृष्टि से **चारों अनुयोग** भी किसी अपेक्षा से **"सिद्धान्त"** कहे जाते हैं, क्योंकि उनके उपसंहार में **सिद्धतत्त्व का प्रतिपादन** विद्यमान है।

◆ **निश्चय—व्यवहार नय से आत्मा का स्वरूप**

**निश्चयनय की अपेक्षा से प्रत्येक जीव की आत्मा सिद्धस्वरूप है**, अर्थात् उसमें **अनन्त ज्ञान-दर्शन आदि गुणों की सत्ता** निहित है। किन्तु **व्यवहारनय से वही जीव संसारी** है, क्योंकि वह **पंचपरिवर्तनशील संसार में परिभ्रमण** कर रहा है। अतः जब तक जीव **सिद्ध पद को प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त नहीं कर लेता**, तब तक उसे **सिद्धों की आराधना, उपासना एवं अनुकरण** करना आवश्यक है।

◆ **अष्टान्हिक पर्व का स्वरूप एवं काल-विन्यास**

**अष्टान्हिक पर्व अनादिनिधन एवं अत्यंत पुण्यप्रद पर्व** है। यह **वर्ष में तीन बार—आषाढ़, कार्तिक एवं फाल्गुन मास** में, **शुक्ल पक्ष की अष्टमी से पूर्णिमा तक** सम्पन्न होता है। इस अवधि में **श्रावकजन व्रत, उपवास, आराधना एवं विशेष पूजन** करते हैं तथा **सिद्धचक्र, नन्दीश्वर, कल्पद्रुम एवं इन्द्रध्वज आदि मंडल विधानों का आयोजन** करते हैं। इस प्रकार यह पर्व **आत्मशुद्धि, भक्तिभाव एवं आध्यात्मिक उन्नति का विशिष्ट अवसर** है।

◆ **नन्दीश्वर पर्व की संज्ञा एवं दिव्य आराधना**

अष्टान्हिक पर्व को मुख्यतः **"नन्दीश्वर पर्व"** भी कहा जाता है, क्योंकि इस काल में **चारों प्रकार के इन्द्र एवं देवगण नन्दीश्वर द्वीप** में जाकर वहाँ स्थित **बावन जिनालयों की विधिपूर्वक पूजा-अर्चना** करते हैं। यह वर्णन **दैविक आराधना के आदर्श स्वरूप** को उद्घाटित करता है, जो साधक के लिए प्रेरणास्त्रोत है।

◆ **भक्ति की भावाभिव्यक्ति**

नन्दीश्वर पूजन में व्यक्त यह भावना अत्यंत मार्मिक है—

**"हमें शक्ति सो नाहिं इहाँ करि थापना।**

**पूजूँ जिनगृह प्रतिमा, है हित आपना।।"**

अर्थात् **हममें वहाँ जाकर प्रत्यक्ष स्थापना करने की शक्ति नहीं है**, अतः हम यहाँ **जिनमंदिर में प्रतिमा के माध्यम से ही पूजन कर अपने आत्महित का साधन करते हैं।** यह भावना **भक्ति, विनय एवं आत्मसमर्पण** का उत्कृष्ट उदाहरण है।

◆ **नन्दीश्वर द्वीप की अप्राप्यता एवं नैमित्तिक आराधना**

**मनुष्य नन्दीश्वर द्वीप तक प्रत्यक्ष रूप से नहीं पहुँच सकते**, क्योंकि वह **मनुष्य क्षेत्र से परे स्थित दिव्य क्षेत्र** है। अतः शास्त्रों में मनुष्यों के लिए **नैमित्तिक पूजा-विधान एवं आराधना-पद्धतियाँ** निर्दिष्ट की गई हैं। इसी प्रकार **साधु-संघ के लिए भी नन्दीश्वर पर्व संबंधी विशेष नैमित्तिक क्रियाएँ** प्रतिपादित हैं। साधुजन प्रतिदिन **नन्दीश्वर क्रिया के अंतर्गत सिद्धभक्ति, नन्दीश्वर भक्ति, पंचगुरुभक्ति, शान्तिभक्ति एवं समाधिभक्ति** का पाठ करते हैं, जो उनकी **आध्यात्मिक साधना का अभिन्न अंग** है।

◆ **नन्दीश्वर द्वीप का वैभव एवं लौकिक अनुकरण**

वर्तमान में अनेक स्थानों पर **नन्दीश्वर द्वीप की रचनाएँ (प्रतिमान)** निर्मित की गई हैं, जिनके माध्यम से **अकृत्रिम चैत्यालयों के स्वरूप का अनुमान** किया जाता है। विशेष तथ्य यह है

कि वहाँ **मनुष्य क्षेत्र की भाँति रात्रि–दिवस का कोई भेद नहीं** है। कर्मभूमि की तिथियों के अनुसार ही **अष्टमी से पूर्णिमा तक देवगण अहर्निश पूजन** करते रहते हैं। **त्रिलोकसार** एवं **तिलोयपण्णत्ती** जैसे **करणानुयोग के प्राचीन ग्रंथों** में **नन्दीश्वर द्वीप के अलौकिक वैभव का अत्यंत विस्तृत एवं रमणीय वर्णन** प्राप्त होता है।

**◆ सम्यग्दृष्टि जीव की दिव्य गति**

**सम्यग्दृष्टि मनुष्य जब समाधिमरणपूर्वक शरीर का परित्याग करता है**, तब वह **वैमानिक देवों में उत्पन्न** होता है। वहाँ उत्पन्न होकर वह **स्नानादि से निवृत्त होकर अपनी इच्छानुसार अकृत्रिम चैत्यालयों की वंदना** करता है। अतः साधक को चाहिए कि वह **जिनेन्द्र भक्ति के माध्यम से अपना सम्यग्दर्शन निर्मल** बनाए, जिससे उसे भी **मैना सुन्दरी के समान उत्तम फल की प्राप्ति** हो सके।

**◆ सम्यग्दर्शन की दृढ़ता का महत्व**

इसी प्रकार साधक को **सम्यग्दर्शन की दृढ़ता में कभी शिथिल नहीं होना चाहिए**। यही दृढ़ता उसे **स्त्रीपर्याय, तिर्यंचयोनि, नरकगति आदि दुःखद अवस्थाओं से मुक्त** कर सकती है। **आचार्य समन्तभद्र स्वामी** के वचनानुसार– **"झोंके में तिनका उड़ जाता है, परन्तु पत्थर प्रचण्ड आंधी में भी अडिग रहता है।"** अतः साधक को चाहिए कि वह **धर्म में पत्थर के समान अचल एवं दृढ़** बना रहे।

**◆ सम्यग्दर्शन का फल एवं शास्त्रीय प्रमाण**

शास्त्रों में कहा गया है–

**"सम्यग्दर्शनशुद्धा, नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि।**

**दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः।।"**

अर्थात् **सम्यग्दर्शन से शुद्ध जीव नरकगति, तिर्यंचयोनि, नपुंसकत्व, स्त्रीपर्याय, नीचकुल, विकृत शरीर, अल्पायु एवं दरिद्रता को प्राप्त नहीं होता।** यह **सम्यक्त्व की महानता का प्रत्यक्ष प्रमाण** है।

**◆ श्रद्धा की विजय : एक दार्शनिक प्रसंग**

एक बार **दो देवों ने एक सम्यग्दृष्टि श्रावक की परीक्षा** लेने का विचार किया। **मथुरा के राजा** जब **वासुपूज्य भगवान के समवसरण** के दर्शन हेतु जा रहे थे, तब देवों ने उनके रथ को मार्ग में रोक दिया। अनेक प्रयासों के पश्चात् भी रथ नहीं चला। सभी ने लौटने का सुझाव दिया, किन्तु राजा ने कहा—**"दर्शन किए बिना मैं वापस नहीं लौटूँगा।"** अन्ततः राजा ने **अटूट श्रद्धा से भगवान का स्मरण** किया और तत्काल रथ चल पड़ा। देवताओं की शक्ति भी उसकी **दृढ़ श्रद्धा के समक्ष निष्प्रभावी** हो गई। तत्पश्चात् उन्होंने प्रकट होकर उसके **सम्यक्त्व की प्रशंसा** की।

**◆ सम्यग्दर्शन की अचलता का संदेश**

**सम्यग्दर्शन आत्मा में प्रकट होने वाला तत्व** है, जिसे **भय, लोभ, लाभ अथवा लौकिक आकर्षणों के कारण कभी त्यागना नहीं चाहिए। आचार्य वीरसागर महाराज** का उपदेश है-

**"पत्थर बनो, तिनका मत बनो।"**

अर्थात् **धर्म में दृढ़ता एवं स्थिरता ही साधक की वास्तविक शक्ति** है, क्योंकि **तिनका अल्प वायु से भी डोल जाता है**, जबकि **पत्थर प्रचण्ड तूफानों में भी अचल रहता है।**[16]

इस शोध-प्रस्तुति में प्रतिपादित किया गया है कि **जीव का वास्तविक स्वरूप अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख एवं अनन्तवीर्य से युक्त शुद्ध चेतन तत्त्व** है, किन्तु **अष्टकर्मों के बंधन के कारण वह संसार में परिभ्रमण करता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र** के समन्वय से ही इन कर्मों का क्षय संभव है, जिससे जीव क्रमशः **अरिहंत और अंततः सिद्ध पद** को प्राप्त

[16] https://encyclopediaofjainism.com/ **सिद्धचक्र विधान माहात्म्य**

करता है। **सिद्ध परमेष्ठी** वे हैं जिन्होंने समस्त कर्मों का पूर्ण क्षय कर **शुद्ध, अशरीरी, निर्विकार एवं अनन्तानन्दस्वरूप अवस्था** प्राप्त कर ली है।

**सिद्धचक्र विधान** इस सिद्धतत्त्व की आराधना का **समन्वित एवं प्रभावी आध्यात्मिक माध्यम** है, जो विशेषतः **अष्टान्हिका पर्व** में अत्यधिक फलदायी माना गया है। इसके माध्यम से साधक **आत्मशुद्धि, पुण्यसंचय एवं मोक्षमार्ग की प्रेरणा** प्राप्त करता है। सिद्धों का चिंतन यह बोध कराता है कि **"जैसे वे बने हैं, वैसे हम भी बन सकते हैं",** अतः उनका ज्ञान केवल वंदना नहीं, बल्कि **आत्मजागरण और आत्मसाक्षात्कार का साधन** है।

**सम्यग्दर्शन की दृढ़ता, अहिंसा का पालन, एवं अपनी सांस्कृतिक-धार्मिक मूल्यों के प्रति अडिग निष्ठा** ही साधक को उच्च आध्यात्मिक अवस्था की ओर अग्रसर करती है। **सिद्धों की आराधना, श्रद्धा और अनुकरण** के द्वारा ही जीव **संसारबंधन से मुक्त होकर अपने शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त कर सकता है**—यही इस सम्पूर्ण विवेचन का मूल संदेश है।